आज़ाद हिन्द फौज (आई.एन.ए.) और सुभाष चंद्र बोस

अजय कुमार

दीनदयाल उपाध्याय अध्ययन केंद्र, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला)

सरांश - द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान भारत को ब्रिटिश साम्राज्यवादी गुलामी से मुक्त कराने हेतु 'आजाद हिन्द फौज' द्वारा किया गया सैन्य अभियान निः सन्देह साहसिक कदम था। भारतीय राष्ट्रीय सेना (INA) का गठन, जापानी सरकार का सहयोग और इसके असफल होने आदि बिन्दुओ पर केंद्रित यह संक्षेप लेख 'आज़ाद हिन्द फौज' के इतिहास और सुभाष चन्द्र बोस के नेतृत्व आदि का आकलन करेगा। खासकर इसकी असफलता मे कांग्रेस पार्टी की असहयोग की भूमिका को उजागर किया जाऐगा।

परिचय

आजाद हिंद फौज, जिसे Indian National Army (INA) के नाम से भी जाना जाता है, ने ब्रिटिश शासन से भारत कि आज़ादी के लिए संघर्ष में एक महत्वपूर्ण और प्रेरक भूमिका निभाई। द्वितीय विश्व युद्ध के उथल-पुथल भरे दौर में गठित, आजाद हिंद फौज में मुख्य रूप से वे भारतीय सैनिक शामिल थे, जो दक्षिण-पूर्व एशिया में अंग्रेजों के लिए लड़ रहे थे और बाद में जापानी सेना द्वारा युद्ध बंदी बना लिए गए थे। ये भारतीय सैनिक, जो पहले ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन सेवा कर रहे थे, उन्हें लड़ने का एक नया अवसर दिया गया - औपनिवेशिक स्वामियों के लिए नहीं, बल्कि अपने देश की स्वतंत्रता के लिए। आजाद हिंद फौज "इंडियन इंडिपेंडेंस लीग" (Indian Independence League) से उभरा, जिसका गठन टोक्यो समझौते के तहत मेजर फुजिवारा, एक जापानी सैन्य अधिकारी और कैप्टन मोहन सिंह, जो भारतीय युद्धबंदियों का प्रतिनिधित्व करते थे, के बीच हुआ था। इस संगठन का उद्देश्य सशस्त्र प्रतिरोध के माध्यम से भारत को ब्रिटिश शासन से मुक्त कराना था, इसके सदस्य एक स्वतंत्र और स्वतंत्र भारत के दृष्टिकोण से प्रेरित थे।

सुभाष चंद्र बोस के नेतृत्व में, आई.एन.ए. ने ब्रिटिश सेनाओं के खिलाफ एक सैन्य अभियान शुरू किया, जिसमें महत्वपूर्ण लड़ाइयाँ लड़ी गईं, जो कि उनकी अंतिम सैन्य विफलता के बावजूद, भारत की स्वतंत्रता के लिए बहादुर प्रतिरोध और बलिदान के प्रतीक के रूप में याद की जाती हैं। आज़ाद हिंद फ़ौज की विरासत और भारतीय स्वतंत्रता के लिए इसकी लड़ाई, औपनिवेशिक शासन के खिलाफ भारत के संघर्ष के इतिहास में एक गौरवपूर्ण अध्याय बनी हुई है।

आई.एन.ए. की स्थापना - आई.एन.ए की स्थापना द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान हुई थी, जब जापानी सेना ने दक्षिण-पूर्व एशिया में आगे बढ़ते हुए इस क्षेत्र में ब्रिटिश, डच और फ्रांसीसी औपनिवेशिक शक्तियों को कुशलतापूर्वक उखाड़ फेंका था। तब जापानी सेना ने ब्रिटिश भारतीय सेना में सेवारत बड़ी संख्या में भारतीय सैनिकों को पकड़ लिया, तो उन्होंने इन युद्धबंदियों को ब्रिटिश शासन से भारत को आज़ाद कराने के उद्देश्य से एक आंदोलन में भर्ती करने का अवसर देखा। जापानी सरकार की ओर से, मेजर फुजिवारा (जिसे मेजर मुजी के नाम से भी जाना जाता है) ने भारतीय युद्धबंदियों से एक प्रस्ताव के साथ संपर्क किया: जापानी सेना के साथ भाड़े के सैनिकों के रूप में नहीं, बल्कि भारत की स्वतंत्रता के लिए लड़ना। इस पहल ने इंडियन इंडिपेंडेंस लीग के गठन को जन्म दिया, एक संगठन जिसकी अवधारणा शुरू में रास बिहारी बोस द्वारा की गई थी, जो एक लंबे समय से भारतीय क्रांतिकारी थे, जो सालों पहले जापान चले गए थे।[xxiii] लीग को कैप्टन मोहन सिंह से सहयोग मिला, जो पकड़े गए भारतीय सैनिकों में एक प्रमुख नेता थे, और निरंजन सिंह गिल, आंदोलन में एक और प्रभावशाली व्यक्ति थे।

आज़ाद हिंद फ़ौज की पहली डिवीज़न की औपचारिक स्थापना 1 दिसंबर 1942 को कैप्टन मोहन सिंह के नेतृत्व में की गई थी। इस डिवीज़न में 16,000 से ज़्यादा सैनिक स्वेच्छा से आई.एन.ए में भर्ती हुए थे, यह संख्या आंदोलन के ज़ोर पकड़ने के साथ-साथ काफ़ी बढ़ गई। इस शुरुआती चरण के अंत तक, आई.एन.ए में 60 ,000 भारतीय युद्ध बंदी शामिल हो गए थे, जो अपनी मातृभूमि की मुक्ति के लिए अंग्रेजों के खिलाफ़ हथियार उठाने को तैयार थे। आई.एन.ए के विकास का दूसरा और ज़्यादा महत्वपूर्ण चरण जुलाई 1943 में सिंगापुर में सुभाष चंद्र बोस के आगमन के साथ शुरू हुआ। बोस, जो 1941 से जर्मनी के बर्लिन में "फ्री इंडिया सेंटर" का नेतृत्व कर रहे थे, ने द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जर्मनी के रूस पर हमले के बाद अपने प्रयासों को दक्षिण-पूर्व एशिया में स्थानांतरित करने का अवसर देखा।[xxiii] यह समझते हुए कि जापानी सेनाएँ इस क्षेत्र में उपनिवेश-विरोधी आंदोलनों का सक्रिय रूप से समर्थन कर रही थीं, बोस ने स्थानांतरित होने का रणनीतिक निर्णय लिया। सिंगापुर पहुंचने पर, बोस ने इंडियन इंडिपेंडेंस लीग और आज़ाद हिंद फ़ौज दोनों का नेतृत्व संभाला और उन्हें एक शक्तिशाली सैन्य और राजनीतिक संगठन में एकीकृत किया। उनके नेतृत्व मे आज़ाद हिंद फ़ौज का पुनर्गठन किया गया और इसने भारतीय स्वतंत्रता की लड़ाई के लिए अधिक संगठित, गतिशील दृष्टिकोण अपनाया। नेताजी सुभाष चंद्र बोस के नेतृत्व में इस नए चरण में आई.एन.ए को व्यापक मान्यता मिली और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में एक प्रमुख शक्ति के रूप में इसकी स्थिति मजबूत हुई।

सुभाष चंद्र बोस का जीवन परिचय

सुभाष चंद्र बोस भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के सबसे प्रमुख और गतिशील नेताओं में से एक थे, जो अपनी अटूट देशभक्ति और भारत को ब्रिटिश शासन से मुक्त कराने के दृढ़ संकल्प के लिए जाने जाते थे। उनका जन्म 23 जनवरी, 1897 को उड़ीसा के कटक शहर में हुआ था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा कटक के रेवेनशॉ कॉलेजिएट स्कूल में हुई, जिसके बाद उन्होंने कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कॉलेज में दाखिला लिया और बाद में इंग्लैंड के कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा प्राप्त की।[xxiii] बोस एक असाधारण छात्र थे और उन्होंने 1920 में प्रतिष्ठित भारतीय सिविल सेवा (ICS) परीक्षा उत्तीर्ण करके अपनी शैक्षणिक योग्यता साबित की, जिसमें उन्होंने चौथा स्थान प्राप्त किया। हालाँकि, उनका दिल ब्रिटिश सरकार की सेवा करने में नहीं था। अप्रैल 1921 में, बढ़ते राष्ट्रवादी जोश और महात्मा गांधी के नेतृत्व से प्रेरित होकर, बोस ने भारतीय सिविल सेवा से इस्तीफा दे दिया और स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े। उस समय, भारत असहयोग आंदोलन के

बीच में था, जो ब्रिटिश वस्तुओं, संस्थानों का बहिष्कार करने और आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देने के उद्देश्य से एक विशाल राष्ट्रव्यापी अभियान था। इस आंदोलन ने पूरे देश में स्वतंत्रता की भावना को जगाया और सुभाष चंद्र बोस पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा।

आंदोलन के कारण बढ़ती अशांति का सामना कर रही ब्रिटिश सरकार ने 1919 में सेक्रेटरी ऑफ इण्डिया, मोंटेग्यू-चेम्सफोर्ड (वाइसराय) द्वारा संस्तुत संवैधानिक सुधारों को लागू करके असंतोष को दबाने का प्रयास किया, जिसमें सीमित स्वशासन का वादा किया गया था। हालाँकि, भारतीय नेता इन आधे-अधूरे उपायों से बहुत असंतुष्ट थे। नवंबर 1921 में, जब प्रिंस ऑफ वेल्स भारत आए, तो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने उनके आगमन का विरोध करने के लिए पूर्ण हड़ताल का आह्वान किया। इस आह्वान के जवाब में कलकत्ता, अन्य भारतीय शहरों की तरह, बड़े पैमाने पर हड़ताल का गवाह बना। उस समय, कलकत्ता में कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष चित्तरंजन दास थे, जो एक प्रमुख स्वतंत्रता सेनानी और सुभाष चंद्र बोस के गुरु थे। दास ने कलकत्ता में आंदोलन को संगठित करने की जिम्मेदारी बोस को सौंपी और उनके नेतृत्व में आंदोलन ने महत्वपूर्ण गति पकड़ी।[xxiii] दिसंबर 1921 में, देशबंधु चित्तरंजन दास और सुभाष चंद्र बोस, कई अन्य नेताओं के साथ, ब्रिटिश विरोधी गतिविधियों में शामिल होने के आरोप में गिरफ्तार किए गए। बोस को छह महीने के कारावास की सजा सुनाई गई, जिसके साथ ही भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के साथ उनके लम्बे जुड़ाव की शुरुआत हुई।

सुभाष चंद्र बोस भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओ में लगातार आगे बढ़ते रहे। वे पार्टी के भीतर युवा और वामपंथी गुटों की एक प्रमुख आवाज़ बन गए। पंडित मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में कलकत्ता में आयोजित कांग्रेस के 1928 के वार्षिक अधिवेशन में, बोस इन समूहों के एक प्रमुख प्रवक्ता के रूप में उभरे, जिन्होंने स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए अधिक कट्टरपंथी और तत्काल कार्रवाई की वकालत की। अगले वर्ष, 31 दिसम्बर 1929 में, जब जवाहरलाल नेहरू ने रावी नदी के तट पर भारतीय ध्वज फहराया, तो बोस ने ब्रिटिश सत्ता को सीधे चुनौती देने के लिए एक समानांतर सरकार बनाने का सुझाव दिया। हालाँकि, उनके प्रस्ताव को कांग्रेस नेतृत्व ने अस्वीकार कर दिया।[xxiii] लाहौर अधिवेशन के बाद, जहाँ कांग्रेस ने आधिकारिक तौर पर पूर्ण स्वराज (पूर्ण स्वतंत्रता) को अपना लक्ष्य घोषित किया, बोस और कई अन्य वामपंथी नेताओं को उनके कट्टरपंथी विचारों के कारण कांग्रेस कार्य समिति से निष्कासित कर दिया गया। इसके बाद सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान, बोस को एक बार फिर महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू के साथ गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हें मध्य प्रांत के सिवनी नामक एक सुदूर स्थान पर कैद किया गया, जहाँ उनका स्वास्थ्य काफी बिगड़ गया, जिसके कारण उन्हें एक साल के भीतर रिहा कर दिया गया।

अपनी रिहाई के बाद, सुभाष चंद्र बोस ने भारत छोड़ दिया और यूरोप भर में व्यापक रूप से यात्रा की, भारत की स्वतंत्रता के लिए अंतर्राष्ट्रीय समर्थन जुटाने के प्रयास में कई देशों का दौरा किया। विदेश में अपने समय के दौरान, उन्होंने "इण्डियान लीग" की स्थापना की, जिसका उद्देश्य भारतीय प्रवासियों को एकजुट करना और विदेशी सरकारों से समर्थन प्राप्त करना था।[xxiii] बोस के बढ़ते प्रभाव से सावधान अंग्रेजों ने भारत में उनके प्रवेश पर प्रतिबंध लगा दिया। हालाँकि, वे 1936 में भारत लौट आए और तुरंत फिर से गिरफ्तार कर लिए गए। उनके खराब स्वास्थ्य के कारण, उन्हें मार्च 1937 में रिहा कर दिया गया। 1938 में, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के भीतर सुभाष चंद्र बोस का कद नई ऊंचाइयों पर पहुंच गया जब उन्हें कांग्रेस का अध्यक्ष चुना गया। उनके कार्यकाल के दौरान, सात प्रांतों में कांग्रेस की सरकारें बनीं,

लेकिन गांधी सहित पार्टी के भीतर अधिक रूढ़िवादी और उदारवादी नेताओं के साथ उनके बढ़ते मतभेद स्पष्ट हो गए। 1939 में, बोस ने फिर से अध्यक्ष पद के लिए दौड़ लगाई और डॉ. पट्टाभि सीतारमैया को हराया, जो गांधी के पसंदीदा उम्मीदवार थे। हालाँकि, गांधी ने इस हार को एक व्यक्तिगत आघात के रूप में देखा, और बोस को कांग्रेस नेतृत्व से बढ़ते दबाव का सामना करना पड़ा।

आंतरिक संघर्षों के बीच रहने के बजाय, सुभाष चंद्र बोस ने कांग्रेस के अध्यक्ष पद से इस्तीफा दे दिया और "**फॉरवर्ड ब्लॉक**" की स्थापना की, जो अधिक कट्टरपंथी और समाजवादी तत्वों का प्रतिनिधित्व करता था। इस समय तक, बोस कांग्रेस की राजनीतिक विचारधारा और तरीकों, विशेष रूप से अहिंसा के प्रति इसके पालन से असंतुष्ट हो गए थे। उनका मानना था कि स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए सशस्त्र प्रतिरोध सहित अधिक प्रत्यक्ष कारवाई की आवश्यकता थी। सशस्त्र संघर्ष के लिए बोस की इच्छा ने उन्हें विदेशी शक्तियों, विशेष रूप से ब्रिटेन के विरोधियों से समर्थन मांगने के लिए प्रेरित किया। 1941 में, उन्होंने ब्रिटिश निगरानी से एक साहसी भागने की कोशिश की और यूरोप की यात्रा की, जहाँ उन्होंने जर्मनी और अन्य यूरोपीय शक्तियों जैसे नेताओं के साथ गठबंधन करने की कोशिश की। बोस का मानना था कि जर्मनी और जापान के साथ गठबंधन करके, वह भारत में ब्रिटिश शासन के खिलाफ सशस्त्र विद्रोह शुरू करने के लिए आवश्यक सैन्य समर्थन जुटा सकते हैं। यूरोप पहुँचने और अंतर्राष्ट्रीय समर्थन जुटाने के उनके साहसिक कदम ने किसी भी तरह से भारत के लिए स्वतंत्रता प्राप्त करने के उनके दृढ़ संकल्प को दिखाया।[xxiii]

यूरोप में रहते हुए, बोस ने भारत के हित के लिए वकालत करना जारी रखा और भारतीय राष्ट्रीय सेना (INA) के निर्माण के लिए काम किया, जिसने बाद में दक्षिण पूर्व एशिया से अंग्रेजों से लड़ने के उनके प्रयासों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्वतंत्रता के लिए उनके अथक प्रयास और INA में उनके नेतृत्व ने अंततः उन्हें भारत के स्वतंत्रता संग्राम में एक महान व्यक्ति बना दिया, जिन्हें उनके नारे "**तुम मुझे खून दो, और मैं तुम्हें आजादी दूंगा**" और एक स्वतंत्र भारत के लिए उनकी प्रतिबद्धता के लिए याद किया जाता है।[xxiii]

नेताजी और आई.एन.ए.

भारत की स्वतंत्रता के सपने को साकार करने के लिए, भारतीय देशभक्तों और जापानी सेना के सामूहिक समर्थन से आज़ाद हिंद फ़ौज (इंडियन नेशनल आर्मी या INA) का गठन किया गया था। यह द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान ब्रिटिश साम्राज्य का विरोध करने वाली विदेशी शक्तियों के साथ मिलकर ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने की एक व्यापक रणनीति का हिस्सा था। 16 मई, 1943 को, नेताजी के नाम से लोकप्रिय सुभाष चंद्र बोस टोक्यो पहुँचे, जिसने आई.एन.ए. के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ ला दिया। बोस ने अपने करिश्माई नेतृत्व और स्वतंत्रता के लिए अथक प्रयास के साथ पहले ही यूरोप में प्रभाव डाला था। जापान में, जापानी सरकार के प्रतिनिधि कर्नल यामामोटो ने उनका गर्मजोशी से स्वागत किया। बोस के दृढ़ संकल्प और अंग्रेजों के खिलाफ सहयोग की क्षमता को पहचानते हुए, जापान के प्रधान मंत्री तोजो ने उन्हें जापानी संसद (डायट) को संबोधित करने के लिए आमंत्रित किया। इस बैठक के दौरान, तोजो ने बोस से वादा किया कि जापान ब्रिटिश शासन से भारत की स्वतंत्रता को सुरक्षित करने में मदद करने के लिए हर संभव सहायता प्रदान करेगा।[xxiii]

टोक्यो से नेताजी ने रेडियो के माध्यम से भारतीय लोगों को संबोधित किया, जिसमें उन्होंने एक शक्तिशाली संदेश दिया जिसमें भारत के सामने आने वाली चुनौतियों को समाहित किया गया। उन्होंने ब्रिटिश सेना के खिलाफ सशस्त्र क्रांति

आयोजित करने की कठिनाई को स्वीकार किया, जो आधुनिक हथियारों से सुसज्जित थी और भारत के भीतर उसकी मजबूत उपस्थिति थी। इन परिस्थितियों को देखते हुए, बोस ने घोषणा की कि भारत को आज़ाद कराने का भार देश के बाहर रहने वाले भारतीयों के कंधों पर पड़ेगा। उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि आज़ाद हिंद फ़ौज के साथ लड़ने और स्वतंत्रता प्राप्त करने में सहायता करने के लिए विशेष रूप से दक्षिण-पूर्व एशिया में रहने वाले भारतीय प्रवासियों की ज़िम्मेदारी है।

2 जुलाई, 1943 को बोस टोक्यो से सिंगापुर पहुँचे। उनके आगमन का इण्डियन इन्डिपेन्डेन्स लीग के सदस्यों, आज़ाद हिंद फ़ौज के सैनिकों और स्थानीय भारतीय समुदाय ने बड़े उत्साह के साथ स्वागत किया। माहौल उम्मीद से भरा हुआ था, क्योंकि लोगों का मानना था कि बोस का नेतृत्व भारत की मुक्ति की कुंजी होगा।

दो दिन बाद, 4 जुलाई, 1943 को सिंगापुर के कैथे सिनेमा हॉल में एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम हुआ। एक भव्य समारोह के दौरान, रास बिहारी बोस, जिन्होंने पूर्वी एशिया में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को संगठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, ने आधिकारिक तौर पर आंदोलन का नेतृत्व सुभाष चंद्र बोस को सौंप दिया। सत्ता के इस प्रतीकात्मक हस्तांतरण ने सुभाष चंद्र बोस को आज़ाद हिंद फ़ौज और पूर्वी एशिया में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का प्रमुख बना दिया। इस नए नेतृत्व के साथ, नेताजी के दूरदर्शी नेतृत्व में आज़ाद हिंद फ़ौज को गति और स्पष्ट दिशा मिली।

बोस का सिंगापुर आगमन और नेतृत्व संभालना आज़ाद हिंद फ़ौज की गतिविधियों के सबसे तीव्र चरण की शुरुआत थी। बोस अब भारत की आज़ादी के लिए लड़ने के लिए दृढ़ संकल्पित सेना के प्रभारी थे, और उन्होंने सैन्य अभियानों का आयोजन जारी रखा और एक स्वतंत्र भारत के अपने सपने के साथ सैनिकों और नागरिकों दोनों को प्रेरित किया।

भारतीय स्वतंत्रता के लिए आई.एन.ए. की लड़ाई

सुभाष चंद्र बोस ने न केवल Indian National Army (आई.एन.ए.) का नेतृत्व किया, बल्कि भारत के स्वतंत्रता संग्राम को मज़बूत करने के लिए इण्डियन इन्डिपेन्डेन्स लीग और आज़ाद हिंद फ़ौज का रणनीतिक रूप से विस्तार और पुनर्गठन भी किया। उनके प्रयासों की परिणति 21 अक्टूबर, 1943 को सिंगापुर में स्वतंत्र भारत की अनंतिम सरकार या आज़ाद हिंद के गठन के रूप में हुई।[xxiii] इस अनंतिम सरकार को, इसके प्रतीकात्मक और परिचालन महत्व के साथ, जापान, जर्मनी और इटली सहित नौ देशों द्वारा मान्यता दी गई थी। इस सरकार के माध्यम से बोस का उद्देश्य भारत से ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासन को खत्म करना और पूर्ण संप्रभुता हासिल करना था।

इस अनंतिम सरकार की संरचना इस प्रकार थी ;

- सुभाष चंद्र बोस (नेताजी): राज्य प्रमुख, प्रधानमंत्री, युद्ध और विदेश मंत्री
- रास बिहारी बोस: सर्वोच्च सलाहकार
- श्रीमती लक्ष्मी: महिला संगठन की प्रमुख (झांसी की रानी रेजिमेंट की कप्तान)
- एस. ए. अय्यर: प्रचार और प्रसारण मंत्री
- लेफ्टिनेंट कर्नल ए. सी. चटर्जी: वित्त मंत्री
- के. एन. सरकार: कानूनी सलाहकार[xxiii]

इस सरकार का निर्माण केवल प्रतीकात्मक नहीं, बल्कि व्यावहारिक भी था, क्योंकि इसने अंतर्राष्ट्रीय समर्थन मांगा, सैन्य रणनीति विकसित की और भारत को आज़ाद कराने के लिए एक ठोस प्रयास की तैयारी की। नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने सैन्य रणनीति में विशेष रूप से युवाओं को प्रशिक्षित करने के लिए एक व्यापक श्रेणी के रंगरूटों को प्रशिक्षित करने का लक्ष्य रखा। स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं को शामिल करने के महत्व को पहचानते हुए, बोस ने उन्हें झांसी की रानी रेजिमेंट के गठन के माध्यम से सशक्त बनाया, जो कैप्टन लक्ष्मी स्वामीनाथन के नेतृत्व में आई.एन.ए की एक महिला सैन्य शाखा थी, जिन्हें आमतौर पर कैप्टन लक्ष्मी के नाम से जाना जाता था।

जनवरी 1944 में, आज़ाद हिंद फ़ौज और इण्डियन इन्डिपेन्डेन्स लीग के मुख्यालय को रंगून, बर्मा (वर्तमान यांगून, म्यांमार) में स्थानांतरित कर दिया गया। इस स्थानांतरण ने आई.एन.ए को भारत के करीब ला दिया, जिससे वह सीधे ब्रिटिश औपनिवेशिक ताकतों के खिलाफ़ सैन्य अभियानों की योजना बना सके। बोस ने अपने सैनिकों को इस जोशपूर्ण आह्वान से उत्साहित किया ; "**तुम मुझे खून दो, और मैं तुम्हें आज़ादी दूंगा**"।

आई.एन.ए की पहली बड़ी सफलता 4 फरवरी, 1944 को मिली, जब यह बर्मा में **अराकान** मोर्चे पर पहुँची। वहाँ से, आई.एन.ए ने भारत में प्रवेश करने के लिए अपना अभियान शुरू किया, मातृभूमि को आज़ाद कराने के अपने मिशन की घोषणा की और प्रसिद्ध नारा दिया: "**दिल्ली चलो**"।[xxiii] आई.एन.ए के सैनिक भारत को आज़ाद देखने के सपने से प्रेरित थे, और भारत की ओर मार्च ब्रिटिश शासन के तहत असंख्य भारतीयों के लिए आशा का प्रतीक बन गया।

14 अप्रैल, 1944 को एक महत्वपूर्ण क्षण आया, जब आज़ाद हिंद फ़ौज ने भारतीय क्षेत्र मणिपुर के मोइतांग क्षेत्र में भारतीय तिरंगा फहराने में सफलता प्राप्त की। यह जीत मनोबल बढ़ाने वाली थी, जो भारतीय धरती पर सीधे ब्रिटिश शासन को चुनौती देने के आई.एन.ए के इरादे का प्रतीक थी। यह वह मोड़ था जब आई.एन.ए ने खुले तौर पर घोषणा की कि इस क्षेत्र में ब्रिटिश शासन समाप्त हो गया है। हालांकि, यह क्षेत्र जल्द ही ब्रिटिश सेना और आज़ाद हिंद फ़ौज के बीच भीषण लड़ाई का स्थल बन गया, जिसके कारण आई.एन.ए. के अभियान की सबसे भयंकर लड़ाइयाँ हुईं।

4 अगस्त, 1944 को, नेताजी ने रंगून रेडियो पर महात्मा गांधी को संबोधित करते हुए एक भावपूर्ण भाषण दिया। उन्होंने घोषणा की, "**भारत की स्वतंत्रता के लिए अंतिम युद्ध शुरू हो गया है। यह युद्ध तब तक जारी रहेगा जब तक हम भारत से अंतिम अंग्रेज़ को बाहर नहीं निकाल देते और हमारा तिरंगा दिल्ली में वायसराय हाउस पर नहीं फहराता। राष्ट्रपिता! हम भारत की मुक्ति के इस पवित्र युद्ध में आपका आशीर्वाद और शुभकामनाएँ चाहते हैं**।"[xxiii] बोस की गांधी से अपील ने भारतीय संघर्ष की एकता में उनके विश्वास को प्रदर्शित किया, उस व्यक्ति का आशीर्वाद मांगते हुए, जो दृष्टिकोण में मतभेदों के बावजूद, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के सबसे सम्मानित व्यक्ति बने रहे।

हालांकि अंग्रेजों के खिलाफ़ लड़ाई में आईएनए को गंभीर असफलताओं का सामना करना पड़ा, खासकर जब मित्र देशों की सेनाएँ दक्षिण-पूर्व एशिया में फिर से अपनी ज़मीन हासिल करने लगीं, आज़ाद हिंद फ़ौज की भावना और सुभाष चंद्र बोस के नेतृत्व ने भारतीय मानस पर एक अमिट छाप छोड़ी। आई.एन.ए. के साहसी प्रयासों और एकता और बलिदान के लिए इसके आह्वान ने राष्ट्रवाद की एक लहर को प्रेरित किया जिसने भारत की स्वतंत्रता की ओर अग्रसर होने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हालांकि सैन्य हार और उसके बाद 1945 में नेताजी की रहस्यमय परिस्थितियों में मृत्यु ने आई.एन.ए. के प्रत्यक्ष प्रयासों को समाप्त कर दिया, लेकिन आंदोलन की विरासत जीवित रही। युद्ध के बाद

आई.एन.ए. अधिकारियों के मुकदमों ने पूरे भारत में व्यापक विरोध प्रदर्शन को जन्म दिया, जिससे भारत पर कब्ज़ा करने के ब्रिटिश संकल्प को और कमज़ोर कर दिया। सुभाष चंद्र बोस के नेतृत्व में आई.एन.ए. की स्वतंत्रता की लड़ाई भारत के स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण अध्यायों में से एक है, जो राष्ट्र की संप्रभुता के लिए अंतिम बलिदान और अमर भावना को दर्शाता है।

आई.एन.ए. की उपलब्धियाँ

हालाँकि आज़ाद हिंद फ़ौज भारत में ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने के अपने प्राथमिक लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाई, फिर भी इसने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। आई.एन.ए के कार्यों ने एक स्थायी विरासत छोड़ी जिसने कई प्रमुख तरीकों से भारत के स्वतंत्रता संग्राम के पाठ्यक्रम को प्रभावित किया…….

- भारतीय सैनिकों के बारे में ब्रिटिश धारणा में बदलाव:

INA के संघर्ष के सबसे महत्वपूर्ण परिणामों में से एक भारतीय सैनिकों के प्रति ब्रिटिश दृष्टिकोण में बदलाव था। INA के विद्रोह से पहले, ब्रिटिश भारतीय सैनिकों की वफादारी पर बहुत अधिक निर्भर थे, उन्हें एक विश्वसनीय और आज्ञाकारी भाड़े का बल मानते थे। हालाँकि, आई.एन.ए में हजारों भारतीय सैनिकों की भागीदारी, उनके औपनिवेशिक शासकों के खिलाफ लड़ने से इस भरोसे की नींव हिल गई। अंग्रेजों को एहसास हुआ कि भारतीय सैनिकों पर अब बिना किसी सवाल के साम्राज्य की सेवा करने के लिए भरोसा नहीं किया जा सकता। इस बढ़ते अविश्वास ने भारत पर ब्रिटिश पकड़ को कमजोर कर दिया और देश से वापस जाने के अंतिम निर्णय में योगदान दिया।

- राष्टीय एकता को बढ़ावा देना:

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान सांप्रदायिक एकता को बढ़ावा देने में आई.एन.ए ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जो भारत की धार्मिक विविधता को देखते हुए अत्यंत महत्वपूर्ण कारक है। सेना में हिंदू, मुस्लिम, सिख और अन्य सहित विभिन्न धार्मिक पृष्ठभूमि के सैनिक शामिल थे, जो सभी एक ही दुश्मन: ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ़ एक साथ लड़ रहे थे। प्रतिकूल परिस्थितियों में इस सामूहिक प्रयास ने सांप्रदायिक विभाजन को एकजुटता करने में मदद की और राष्ट्रीय एकता की एक मिसाल कायम की, जिसकी स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान बहुत ज़रूरत थी। आई.एन.ए ने दिखाया कि भारतीय, चाहे किसी भी धर्म के हों, स्वतंत्रता के साझा उद्देश्य के लिए एकजुट हो सकते हैं।

- महिलाओं का सशक्तिकरण:

झांसी की रानी रेजिमेंट, आज़ाद हिंद फ़ौज की एक महिला ब्रिगेड, भारतीय महिलाओं के लिए बहुत बड़ी प्रेरणा का स्रोत थी। साहसी स्वतंत्रता सेनानी रानी लक्ष्मी बाई के नाम पर, इस रेजिमेंट का नेतृत्व कैप्टन लक्ष्मी स्वामीनाथन (कैप्टन लक्ष्मी) ने किया था। रेजिमेंट में महिलाओं ने पारंपरिक लैंगिक भूमिकाओं को तोड़ते हुए सैन्य अभियानों और नेतृत्व में सक्रिय रूप से भाग लिया। इन महिलाओं द्वारा प्रदर्शित बहादुरी और दृढ़ संकल्प ने कई भारतीय महिलाओं को ब्रिटिश शासन के खिलाफ लड़ाई में अधिक सक्रिय भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित किया, जिससे पता चला कि वे भी सशस्त्र प्रतिरोध के माध्यम से भारत की स्वतंत्रता के लिए योगदान दे सकती हैं।

- भारतीय प्रवासियों के लिए प्रेरणा:

भारतीय प्रवासियों को संगठित करने में भी आई.एन.ए ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। विदेशों में रहने वाले भारतीय, विशेष रूप से दक्षिण पूर्व एशिया में, आज़ाद हिंद फ़ौज के साहस और दृढ़ संकल्प से बहुत प्रेरित थे। कई प्रवासियों ने INA के उद्देश्य के लिए वित्तीय सहायता, जनशक्ति और रसद सहायता की पेशकश की। इस आंदोलन ने विदेशों में भारतीयों के लिए एकता और उद्देश्य की भावना प्रदान की, जिससे उनकी मातृभूमि में स्वतंत्रता की लड़ाई से उनका जुड़ाव फिर से जग गया। यह प्रभाव सैन्य कार्रवाई से परे फैल गया, जिसने भारतीय प्रवासियों के बीच राष्ट्रवादी भावना को प्रेरित किया और समग्र स्वतंत्रता आंदोलन को मजबूत किया।

आई.एन.ए और कांग्रेस

आज़ाद हिन्द फौज अग्रेजों से किए जा रहे युद्ध को कांग्रेस पार्टी के जरा भी समर्थन नहीं किया। गांधी के अलावा कांग्रेस के सबसे बड़े नेता जवाहरलाल नेहरू भी सुभाष चंद्र बोस के विचार से सदैव असहमत रहे। जब जवाहरलाल नेहरू से जब यह पूछा गया कि यदि जर्मनी जापान के सहयोग से भारत पर मुक्ति सेना हमला किया तो वह क्या करेंगे ? नेहरू ने इसका जोरदार जवाब दिया; हिटलर और जापान नरक में जाए। मैं उनसे अंत तक लड़ूँगा और यही मेरी नीति है। अगर जापान से भारत आती है तो मैं जापान सेना के साथ-साथ सुभाष चन्द्र बोस और उनकी पार्टी से भी लड़ूँगा ।"[xxiii] वर्ष 1945 के मध्य तक नेहरू का यही कहना था कि " आई.एन.ए के नेता ओर अन्य लोग गुमराह हो गए थे ओर जापानियों के साथ अपने दुर्भाग्यपूर्ण संबंध के बडे परिणामों को समझने में विफल रहे थे, इसलिए इन लोगों का उद्देश्य जो भी हो, उनका भारत में या बाहर विरोध किया जाना चाहिए। किन्तु आश्चर्य की घटना यह कि कुछ समय पश्चात् ही, जब आई.एन.ए विरुद्ध लाल किला मुकदमें के तहत कोर्ट मार्शन हेतु प्रक्रिया चल रही थी, तब नेहरू ने अपने वकील की पोशक पहनी और शाह नवाज़, सहगल, ढिल्लो का बचाओ करने पहुच गए । वास्तविकता तो यह 1942 से ने भारत छोड़ो आन्दोलन के शुरुआत और इसके कठोरता पूर्वक दमन तक कांग्रेसी नेताओं की रणनीती गलत रही।[xxiii] 'आज़ति हिन्द फौज' के कैदियों के प्रति भारतीय जनमानस का उपर समर्थन दखते हुए अपनी राजनीतिक सुविधा के लिए काग्रेस इसने कैदियों के बचाओ में आ खड़ी हुई थी। यही नहीं कांग्रेस ने आई.एन. ए राहत समिति गठन किया और इसके कैदियों की तत्काल रिहाई और दोसमुक्ति के प्रस्ताव को भी मजूरी दी। परन्तु तब भारत की स्वतंत्रता के महान उद्देश्य के लिए गठित सघर्ष समिति के लिया बहुत देर हो चुकी थी।

सैन्य हार का सामना करने के बावजूद, आई.एन.ए की उपलब्धियाँ युद्ध के मैदान से आगे तक फैली हुई थीं। इसने भारतीयों में राष्ट्रवाद और एकता की गहरी भावना को प्रेरित किया, ब्रिटिशों के प्रति भारतीय सैनिकों की वफादारी पर सवाल उठाया और 1947 में भारत की अंततः स्वतंत्रता के लिए आधार तैयार किया। सुभाष चंद्र बोस और आई.एन.ए. की विरासत उन लोगों के बलिदान और दृढ़ संकल्प का प्रमाण है, जिन्होंने स्वतंत्र भारत के सपने के लिए भारी बाधाओं के खिलाफ लड़ाई लड़ी।